राजराजेश्वरी : राजभक्ति, हिंदी लोकवृत्त और महारानी विक्टोरिया

शुभनीत कौशिक

पिछले कुछ दशकों में औपनिवेशिक इतिहास और राजनीति को समझने के लिए भारतीय भाषाओं के स्रोतों जैसे पत्र-पत्रिकाओं, निजी संग्रहों, आत्मकथाओं, संस्मरणों और डायरियों आदि के इस्तेमाल ने अतीत की हमारी समझ को समृद्ध और विस्तृत किया है। यह देखना दिलचस्प है कि जहाँ एक ओर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में प्रकाशित होने वाली भारतीय भाषाओं की ये पत्र-पत्रिकाएँ सामाजिक-राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीयता की भावना को आकार देने का काम कर रही थीं, वहीं दूसरी ओर, इनमें राजभक्ति और निष्ठा का भाव भी गहराई से परिलक्षित होता है। सुधीर चंद्र समेत अनेक इतिहासकारों ने इस दुचित्तेपन (ऐंबिवैलेंस) को समझने का प्रयास प्रमुखता से किया है। बांग्ला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि तमाम भारतीय भाषाओं में यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।[1]

हिंदी लोकवृत्त की बात करें तो भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाओं में दुचित्तेपन का यह भाव सबसे अधिक प्रकट होता है लेकिन भारतेंदु कोई अपवाद नहीं थे। भारतेंदु के समकालीन अन्य हिंदी लेखकों की रचनाओं में भी राजभक्ति और ब्रिटिश राज के प्रति निष्ठा का भाव गाहे-बगाहे दिखाई पड़ता है। राजा शिव प्रसाद, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', अंबिका दत्त

[1] देखें, सुधीर चंद्र (1992).

व्यास, राधाकृष्ण दास, मिश्र बंधु, श्यामसुंदर दास समेत हिंदी के ऐसे लेखकों की सूची लंबी है, जिनकी रचनाओं में राजभक्ति का यह भाव परिलक्षित होता है। राजभक्ति के इस भाव की बानगी उन कविताओं, काव्य-संग्रहों, जीवनियों में भी देखने को मिलती है, जो इस दौर में महारानी विक्टोरिया को समर्पित करते हुए लिखी गई थीं। वर्ष 1876 में महारानी विक्टोरिया को भारत-सम्राज्ञी (क़ैसर-ए-हिंद) घोषित किए जाने के बाद ऐसे अनेक अवसर आए, जब हिंदी समेत दूसरी भारतीय भाषाओं के लेखकों ने भी विक्टोरिया के गुणगान गाते हुए रचनाएँ लिखीं। वायसराय लिटन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार (1877) हो, महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारोहण के पचास वर्ष पूरे होने पर 1887 में आयोजित स्वर्ण जयंती (गोल्डेन जुबिली) समारोह हो अथवा उसके दस वर्ष बाद 1897 में आयोजित हीरक जयंती (डायमंड जुबिली) समारोह हो या फिर 1901 में महारानी विक्टोरिया का निधन – इन सभी अवसरों पर भारतीय भाषाओं की अनेक पत्रिकाओं ने विशेषांक निकाले, लेखकों ने अवसर विशेष को ध्यान में रखते हुए काव्य-संग्रह तैयार किए और महारानी विक्टोरिया के चरित्र और उनके व्यक्तित्व का गुणगान करते हुए लेख और जीवनियाँ भी लिखी गईं।[2] इस लेख में महारानी विक्टोरिया के प्रति हिंदी में लिखी गई ऐसी ही रचनाओं का ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही, तत्कालीन उत्तर भारत में चल रहे आंदोलनों जैसे गोरक्षा आंदोलन और हिंदी-नागरी आंदोलन के महारानी विक्टोरिया से जुड़ाव के प्रसंगों का भी अध्ययन किया जाएगा।

भारतीयों का मैग्नाकार्टा : रानी विक्टोरिया का घोषणापत्र और उत्तर भारत की राजनीति

औपनिवेशिक भारत के इतिहास और राजनीति में 1857 के विद्रोह की समाप्ति के बाद वर्ष 1858 में जारी किया गया रानी विक्टोरिया का घोषणापत्र एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। हिंदी लोकवृत्त की बात करें तो उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दशकों में और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हिंदीभाषी इलाक़े के जिस राष्ट्रवादी नेता ने अपने भाषणों और लेखों में बारंबार रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र का उल्लेख किया, वे थे पंडित मदन मोहन मालवीय। भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के वार्षिक अधिवेशन हों, युक्त प्रांत के राजनीतिक सम्मेलन हों या *अभ्युदय* में प्रकाशित लेख हों, मदन मोहन मालवीय ने रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में उल्लिखित बातों को उद्धृत करते हुए अंग्रेज़ी राज से जवाबदेही की माँग की, उसकी नीतियों पर सवाल खड़े किए। ऐसा करते हुए मालवीय ने घोषणापत्र का इस्तेमाल अपने तर्कों को बल देने और उन्हें और प्रभावी बनाने के लिए किया।

वर्ष 1886 में कलकत्ता में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के दूसरे अधिवेशन में भाग लेते हुए मदन मोहन मालवीय ने रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र (1858) का हवाला

[2] विभिन्न भारतीय भाषाओं में रानी विक्टोरिया के बारे में लिखे गए साहित्य के विस्तृत सर्वेक्षण हेतु देखें, माइल्स टेलर (2018).

दिया। केंद्रीय और प्रांतीय परिषदों का विस्तार करने, *परिषद के निर्वाचित सदस्यों की संख्या को बढ़ाकर* कुल सदस्यों की संख्या का आधा करने और निर्वाचित सदस्यों को बजट और दूसरे आर्थिक प्रावधानों से जुड़े सवाल पूछने जैसी अधिक शक्तियाँ देने के प्रस्ताव पर मालवीय ने अधिवेशन में अपना वक्तव्य रखा। 'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं' का नारा लगाते हुए मालवीय ने उपस्थित लोगों को रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र की याद दिलाई और इसे 'भारतीयों का मैग्नाकार्टा' कहा।[3] मालवीय ने घोषणापत्र के उस वाक्य को उद्धृत किया जिसमें भारतीयों को नस्ल या धर्म के आधार पर कोई भेदभाव किए बिना नौकरियों में जगह देने की घोषणा की गई थी, और कहा गया था कि ब्रिटिश प्रजा को उसकी योग्यता, शिक्षा, अर्हता और निष्ठा के आधार पर सेवाओं में जगह मिलेगी।

उपर्युक्त घोषणा की याद दिलाने के बाद मालवीय ने दुख जताते हुए कहा कि प्रशासन और विधायिका में भारतीयों का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। इस विषमता का उल्लेख करते हुए मालवीय ने कहा कि जब हमें प्रशासन में तनिक भी जगह न मिलती हो, जब हमें उन क़ानूनों और विधेयकों पर परिषदों में एक शब्द कहने का भी अधिकार न हो, जो साल-दर-साल हमारे ऊपर थोप दिए जाते हैं और जिन्हें झेलने के लिए हम विवश हैं, तब भला यह कैसे कहा जा सकता है कि हमारे साथ समानता का व्यवहार किया जा रहा है।[4]

इसी प्रकार वर्ष 1904 में भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के बंबई अधिवेशन में ब्रिटिश संसद में भारतीयों के प्रतिनिधित्व की माँग से जुड़े प्रस्ताव पर बोलते हुए मदन मोहन मालवीय ने पुनः 1858 के घोषणापत्र का हवाला देते हुए कहा :

> हमें घोषणापत्र के उदार शब्दों को बार-बार तब तक दुहराना चाहिए, जब तक कि ब्रिटिश शासकों का धीरज न छूट जाए। घोषणापत्र में इस देश का शासन चलाने हेतु जिन उदार सिद्धांतों को सामने रखा गया है, वे दुनिया के किसी भी देश के लिए सम्मान का विषय हो सकते हैं... हम सरकार से किसी क्रांतिकारी बदलाव की उम्मीद नहीं रखते, हम तो केवल इतना ही चाहते हैं कि वह इस घोषणापत्र में बताए गए सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करे।[5]

इसी प्रकार, वर्ष 1908 में लखनऊ में आयोजित युक्त प्रांतीय सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए मदन मोहन मालवीय ने राजनीतिक सुधारों पर बल देते हुए रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में पुनः अपनी आस्था ज़ाहिर की। जहाँ तक रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र के महत्त्व का सवाल था, तो मालवीय का मानना था कि 'किसी संप्रभु शासक द्वारा उसके द्वारा

[3] दो साल बाद इलाहाबाद में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के वार्षिक अधिवेशन (1888) में एक प्रस्ताव पर बोलते हुए मालवीय ने रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र को 'हिंदुस्तानियों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का घोषणापत्र (चार्टर)' कहते हुए, उसे ऐसा आधार-स्तंभ बतलाया जिस पर भारतीयों की माँगें टिकी हुई थीं.

[4] द *ऑनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय : हिज़ लाइफ़ ऐंड स्पीचेज़* : 7-8.

[5] वही : 48-49 (अनुवाद मेरा).

शासित दूसरे देश के लोगों के लिए इससे अधिक उदार सिद्धांत कहीं नहीं अपनाए गए।' इतना ही नहीं दो वर्ष बाद मदन मोहन मालवीय ने इलाहाबाद में घोषणापत्र स्तंभ (प्रोक्लेमेशन पिलर) खड़ा करने की योजना पर भी कार्य आरंभ कर दिया। यह स्तंभ वहीं खड़ा किया जाना था, जहाँ 1 नवंबर, 1858 को वायसराय लॉर्ड कैनिंग ने रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र की उद्घोषणा की थी। घोषणापत्र के स्मारक के रूप में एक पार्क बनाए जाने का प्रस्ताव भी मालवीय ने रखा। बाद में, मालवीय ने वायसराय लॉर्ड मिंटो को घोषणापत्र स्तंभ और स्मारक की आधारशिला रखने के लिए आमंत्रित किया और मिंटो ने आधारशिला रखी तथा यमुना किनारे आयोजित एक विशाल प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया।

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस और दूसरे राजनीतिक सम्मेलनों में दिए गए भाषणों में ही नहीं, *अभ्युदय* जैसे पत्रों में छपे अपने लेखों में भी मालवीय ने राजनीतिक सुधार से जुड़े प्रश्नों पर चर्चा करते हुए पाठकों को बार-बार रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र की याद दिलाई। *अभ्युदय* में प्रकाशित एक ऐसे ही लेख में मालवीय ने यह माँग उठाई कि भारतीयों को वे सभी अधिकार दिए जाने चाहिए, जो इंग्लैंड के नागरिकों को प्राप्त हैं। मालवीय की दृष्टि में संगठन और सभा की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की आज़ादी के अधिकार का महत्त्व सर्वाधिक था।[6] *अभ्युदय* में ही छपे एक अन्य लेख में मदन मोहन मालवीय ने रानी विक्टोरिया द्वारा लॉर्ड लिटन को 1877 में दिल्ली दरबार के अवसर पर भेजे गए उस तार की भी याद दिलाई, जिसमें विक्टोरिया ने स्वतंत्रता, समानता और न्याय की धारणा पर बल दिया था।[7]

पत्र-पत्रिकाओं के अलावा इतिहास की पाठ्यपुस्तकें भी रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र को उद्धृत कर रही थीं। मसलन, राजा शिवप्रसाद द्वारा लिखी गई इतिहास की स्कूली पाठ्यपुस्तक *इतिहासतिमिरनाशक* में पूरा घोषणापत्र ही उद्धृत किया गया। उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक में राजा शिवप्रसाद रानी विक्टोरिया को 'कृपानिधान दयावान क्षमासागर जगतउजागर श्रीमती महारानी एंप्रेस विक्टोरिया' कहकर संबोधित करते हैं।[8]

इतिहासकार बर्नाड कोह्न के अनुसार, रानी विक्टोरिया के उक्त घोषणापत्र को हम एक ऐसे सांस्कृतिक वक्तव्य की तरह समझ सकते हैं जिसमें शासन के दो विरोधाभासी सिद्धांत समाहित थे। एक, जिसके अंतर्गत भारत में सामंती व्यवस्था बरक़रार रखने की कोशिश हो रही थी, तो दूसरा जो उन बदलावों का हामी था, जिसके द्वारा अंततः सामंती व्यवस्था का विनाश होना था। इस घोषणापत्र और दिल्ली दरबार जैसे आयोजनों के बारे में कोह्न ने ठीक ही लिखा है कि 'इनके ज़रिए उन्नीसवीं सदी में भारत में कर्मकांडों का ऐसा मुहावरा गढ़ने की कोशिश की गई, जिसके ज़रिए भारतीयों के सामने ब्रिटिश प्राधिकार को प्रस्तुत किया जा सके।'[9]

---

[6] मदन मोहन मालवीय, 'मर्यादा के अनुसार आंदोलन', *अभ्युदय*, 12 फ़रवरी, 1907.

[7] मदन मोहन मालवीय, 'हमारी सनद और राजकर्मचारी', *अभ्युदय*, 2 मई, 1912.

[8] राजा शिवप्रसाद (1881) : 94.

[9] देखें, बर्नाड कोह्न (1983) : 165-210.

गोरक्षा, हिंदी-नागरी आंदोलन और रानी विक्टोरिया

औपनिवेशिक उत्तर भारत में रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र का हवाला सिर्फ़ मदन मोहन मालवीय सरीखे नेता और *इतिहासतिमिरनाशक* जैसी पाठ्यपुस्तकें ही नहीं दे रही थीं। बल्कि गोरक्षा आंदोलन के नेताओं द्वारा भी रानी विक्टोरिया का हवाला दिया जा रहा था। उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उत्तर भारत में दो प्रभावशाली आंदोलनों का उभार देखने को मिलता है। इनमें से एक राजनीतिक-धार्मिक स्वरूप लिए हुए था, तो दूसरा भाषा की राजनीति से जुड़ा था। दिलचस्प है कि दोनों ही आंदोलनों के नेतृत्व द्वारा रानी विक्टोरिया का नाम अक्सर लिया जाता रहा।

गोरक्षा आंदोलन का नेतृत्व दयानंद सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित संगठन 'आर्य समाज' कर रहा था। दयानंद सरस्वती की अगुवाई में उत्तर भारत के तमाम इलाक़ों में गौरक्षिणी सभाओं की स्थापना की गई और गोहत्या रोकने के लिए एक सशक्त आंदोलन चलाया गया। दिलचस्प है कि दयानंद सरस्वती ने 1881 में लिखी गई अपनी उस किताब में रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र का हवाला दिया, जिसने गोरक्षा आंदोलन के लिए वैचारिक आधार मुहैया कराया था। यह किताब थी – *गोकरुणानिधि*। इसी पुस्तक में दयानंद सरस्वती लिखते हैं :

> श्रीमती राजराजेश्वरी श्रीविक्टोरिया महारानी का विज्ञापन भी प्रसिद्ध है कि इन अव्यक्तवाणी पशुओं को जो-जो दुख दिया जाता है वह-वह न दिया जाए, तो क्या भला मार डालने से भी अधिक कोई दुख होता है? क्या फाँसी से अधिक दुख बंदीगृह में होता है? जिस किसी अपराधी से पूछा जाए कि तू फाँसी चढ़ने में प्रसन्न है या बंदीघर में रहने में? तो वह स्पष्ट कहेगा कि फाँसी में नहीं, बल्कि बंदीघर में रहने में।[10]

इस पुस्तक के लिखे जाने के साल भर बाद ही बनारस के महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के सहयोग से दयानंद सरस्वती ने कलकत्ता में एक गौरक्षिणी समिति की स्थापना की। इसके बाद आर्य समाज ने गोरक्षा के समर्थन में हस्ताक्षर अभियान चलाया और जगह-जगह पर गौरक्षिणी सभाओं की स्थापना की गई। शाहजहाँपुर, बनारस, बंबई, कानपुर, ग़ाज़ीपुर, देहरादून, सारण, गया और ढाका आदि जगहों पर गौरक्षिणी सभाएँ स्थापित हुईं। श्रीमन स्वामी, स्वामी अला राम, गोपालानंद स्वामी जैसे उपदेशकों ने घूम-घूमकर गोरक्षा के समर्थन में उत्तेजक भाषण दिए। गौरक्षिणी सभाओं की गतिविधियों से सांप्रदायिक तनाव का जो माहौल बना, वह उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दशक में उत्तर भारत में अनेक सांप्रदायिक दंगों के रूप में सामने आया।[11] ग़ौरतलब है कि भारतेंदु युग के महत्त्वपूर्ण लेखकों ने भी गोरक्षा आंदोलन के समर्थन में लेख, नाटक और कविताएँ लिखी थीं। इनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र के साथ-साथ प्रताप नारायण मिश्र, अंबिका दत्त व्यास सरीखे लेखक भी शामिल थे।[12]

---

[10] दयानंद सरस्वती (1998 [1881]).

[11] गौरक्षिणी सभाओं के संगठन और गोरक्षा संबंधी आंदोलन के ऐतिहासिक विश्लेषण हेतु देखें, पीटर रॉब (1996) : 285-319; ज्ञानेंद्र पांडे (1981).

[12] अंबिका दत्त व्यास ने 'गोसंकट नाटक' लिखकर गोरक्षा के लिए हिंदुओं का आह्वान किया. उनका यह नाटक *उचित वक्ता*

हिंदी-नागरी आंदोलन में शामिल लेखकों और सभाओं द्वारा भी रानी विक्टोरिया का नाम बार-बार लिया जाता रहा। वर्ष 1893 में स्थापित काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक-सदस्य ख़ुद भी क्वींस कॉलेज के छात्र थे, जिसका नाम रानी विक्टोरिया के नाम पर ही रखा गया था। सभा की पत्रिका *नागरी प्रचारिणी पत्रिका* और सभा के वार्षिक कार्यविवरणों में भी रानी विक्टोरिया का उल्लेख बड़े ही सम्मानपूर्वक होता था। राधाकृष्ण दास ने वर्ष 1901 में *नागरी प्रचारिणी पत्रिका* में प्रकाशित एक लेख में रानी विक्टोरिया के शासनकाल में हिंदी साहित्य की उल्लेखनीय प्रगति का विस्तृत ब्यौरा दिया था। हिंदी के विकास में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज आदि के योगदान को स्वीकारते हुए भी राधाकृष्ण दास ने लिखा कि हिंदी साहित्य की वास्तविक प्रगति रानी विक्टोरिया के शासनकाल में ही हुई। उनका यह भी मानना था कि रानी विक्टोरिया के प्रभाव के चलते ही बिहार, मध्य प्रांत, कुमाऊँ और अंततः पश्चिमोत्तर प्रांत में हिंदी को राजकीय मान्यता मिली।[13]

वर्ष 1884 में लिखे गए नाटक *देवाक्षर चरित्र* में, जिसे भोजपुरी का पहला नाटक होने का श्रेय प्राप्त है, पंडित रविदत्त शुक्ल ने अदालतों और कचहरियों में देवनागरी लिपि की वकालत करते हुए अंग्रेज़ अधिकारी को संबोधित करते हुए लिखा :

> जब तक आप सरीखे पुरुषसिंह श्री महाराणी राजराजेश्वरी के स्वर्गपुरी के समान राजद्वीप से भारतवर्ष में शासनकर्ता नियुक्त होकर भेजे जाएँगे तब तक इस आर्यावर्त का राज्य श्री भारतेश्वरी विजयिनी के आधिपत्य में हिमालय शिखर के समान अचल बना रहेगा।[14]

में वर्ष 1882 में प्रकाशित हुआ. बाद में पुस्तक रूप में इसे खड्ग विलास प्रेस द्वारा 1884 में प्रकाशित किया गया. देखें, *स्वनामधन्य पंडित अंबिका दत्त व्यास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व* (1992).

[13] राधाकृष्ण दास, 'विक्टोरिया शोकप्रकाश', *नागरी प्रचारिणी पत्रिका*, भाग 5, 1901.

[14] रविदत्त शुक्ल (1884) : 47.

मूर्तियाँ, पार्क और स्कूल : औपनिवेशिक भारत में रानी विक्टोरिया और उत्तर-औपनिवेशिक राजनीति

वर्ष 1876 में रानी विक्टोरिया के भारत-सम्राज्ञी घोषित किए जाने के बाद दिल्ली दरबार, जुबिली समारोहों और रानी विक्टोरिया के निधन के बाद भी भारत में जगह-जगह विक्टोरिया और ब्रिटिश राजपरिवार के अन्य प्रमुख सदस्यों की मूर्तियाँ स्थापित की गईं, सार्वजनिक पार्कों और शिक्षण संस्थानों का नामकरण भी उनके नाम पर हुआ। तब के युक्त प्रांत में गोरखपुर, लखनऊ, बलिया आदि जगहों पर वर्ष 1887 में सिल्वर जुबिली के अवसर पर स्कूलों की भी स्थापना की गई, जिन्हें जुबिली स्कूल/कॉलेज कहा गया। रानी विक्टोरिया की एक ऐसी ही मूर्ति उनके निधन के चार वर्ष बाद इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में स्थापित हुई। ख़ुद अल्फ्रेड पार्क का नामकरण ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा (अल्फ्रेड) के नाम पर हुआ था, जो वर्ष 1870 में हिंदुस्तान आए थे। उस अवसर पर पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ़्टिनेंट गवर्नर विलियम म्योर ने उन्हें इलाहाबाद आने का निमंत्रण दिया। अल्फ्रेड के इलाहाबाद आगमन के दौरान एक पार्क की स्थापना हेतु आधारशिला रखी गई और इसका नाम अल्फ्रेड पार्क रखा गया। पैंतीस साल बाद इसी पार्क में रानी विक्टोरिया की मूर्ति स्थापित हुई और मार्च 1906 में इसका उद्घाटन युक्त प्रांत के तत्कालीन लेफ़्टिनेंट गवर्नर सर जेम्स डिगेस ला टूश द्वारा किया गया।

इसी तरह वर्ष 1903 में बनारस में 'विक्टोरिया पार्क' बनाया गया। शहर के बीच में स्थित यह पार्क बेनिया और हर ताल को सुखाकर बनाया गया। बेनिया ताल के दलदली इलाक़े को सुखाने की परियोजना पहली बार 1878 में बनाई गई, किंतु यह पच्चीस साल बाद ही साकार रूप ले सकी। बनारस के दो रईसों – राय नारायण दास और राय नरसिंहदास ने विक्टोरिया पार्क के निर्माण के लिए भारी रक़म अनुदान में दी।[15] विक्टोरिया पार्क में (जिसे अब 'बेनिया बाग़' कहा जाता है) रानी विक्टोरिया की एक मूर्ति भी स्थापित की गई। आज़ादी के बाद पचास के दशक में समाजवादी नेताओं द्वारा साम्राज्यवादी शासकों और वाइसरायों की मूर्तियाँ हटाने का आंदोलन चलाया गया। उसी दौरान वर्ष 1957 में, जोकि 1857 के विद्रोह का शताब्दी वर्ष भी था, बनारस के कुछ समाजवादी नेताओं द्वारा मई में समूह बनाकर विक्टोरिया पार्क पहुँचकर रानी विक्टोरिया की मूर्ति तोड़ दी गई। इन नेताओं का नेतृत्व समाजवादी नेता राज नारायण द्वारा किया गया। बाद में उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया और जेल की सज़ा भी हुई। विडंबना कहें या ऐतिहासिक न्याय कि आगे चलकर विक्टोरिया पार्क का नाम बदलकर 'लोकबंधु राज नारायण पार्क' रख दिया गया।[16]

---

[15] एच.आर. नेविल (1909) : 118.

[16] रामसागर सिंह (2010) : 42.

राजभक्ति, रानी विक्टोरिया और हिंदी का बौद्धिक वर्ग

हिंदी में राजभक्ति संबंधी सर्वाधिक रचनाओं का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को जाता है। भारतेंदु ने न केवल स्वयं राजभक्ति संबंधी कविताएँ लिखीं, बल्कि 'भारतेंदु मंडल' के दूसरे लेखकों को भी राजभक्ति संबंधी रचनाएँ लिखने के लिए प्रेरित किया। जब वर्ष 1870 में ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा अपनी भारत-यात्रा के दौरान बनारस पहुँचे, तब वहाँ उनका स्वागत भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा किया गया। 20 जनवरी, 1870 को भारतेंदु ने काशी में पंडितों की एक सभा आयोजित की, जहाँ ड्यूक ऑफ़ एडिनबरा के भारत आगमन पर उल्लास प्रकट करते हुए कविताएँ पढ़ी गईं।[17] राजकुमार अल्फ्रेड की प्रशंसा में रचित ज़्यादातर कविताएँ संस्कृत में लिखी गई थीं। ये कविताएँ बाद में एक काव्य-संग्रह के रूप में प्रकाशित की गईं, जिसका शीर्षक था *सुमनांजलि*। भारतेंदु ने स्वयं हिंदी में लिखित राजकुमार की एक संक्षिप्त जीवनी उपस्थित श्रोताओं के सामने पढ़ी। इसी अवसर पर लिखी एक कविता में भारतेंदु ने अल्फ्रेड को धरती का चंद्रमा ('भूमि चंद') कहते हुए लिखा :

जानि अधिकाई सब भाँति राजपुत्र ही की,
गहन के मिस यह मति उपजाई है।
देखि आज उदित प्रकाशमान भूमि-चंद,
नभ-ससि लाज मुख कालिमा लगाई है।।[18]

वर्ष 1871 में जब प्रिंस ऑफ़ वेल्स टाइफ़ाइड बुख़ार से पीड़ित थे, तब उनके शीघ्र स्वस्थ होने की कामना करते हुए भारतेंदु ने एक कविता लिखी। चार साल बाद जब प्रिंस ऑफ़ वेल्स भारत आए, तब भी भारतेंदु ने उनका स्वागत करते हुए एक लंबी कविता लिखी, जिसका शीर्षक था 'श्री राजकुमार-शुभागमन वर्णन'। *बालाबोधिनी* पत्रिका में छपी इस कविता में भारतेंदु ने राजकुमार के काशी आगमन की तुलना भगवान राम के अयोध्या लौटने से की :

जिमि रघुबर आए अवध जिमि रजनी लहि चंद
तिमि आगमन कुमार के कासी लह्यो अनंद।[19]

इस कविता के अंतिम दोहे में भारतेंदु ने युवराज, उनके भाई, उनकी पत्नी और माँ रानी

---

[17] इस अवसर पर भाग लेने वाले विद्वानों में प्रमुख थे : बापूदेव शास्त्री, राजाराम शास्त्री, बस्ती राम, गोविंद देव, शीतल प्रसाद बेचन राम, ढूंढ़िराज धर्माधिकारी, रमापति दुबे, राम कृष्ण पट्टबर्धन, शिव राम गोविंद रानाडे, नारायण कवि, हनुमान कवि, राधा कृष्ण दास, मधुसूदन दास, गोकुल चंद्र, मुंशी संकठा प्रसाद, मौलवी अशरफ अली ख़ान.

[18] ब्रजरत्नदास (1962) : 168.

[19] इसी कविता में भारतेंदु ने काशी की तुलना दुल्हन से करते हुए प्रिंस ऑफ़ वेल्स को दूल्हा बतलाया है ('दुलही सी कासीपुरी उलही नव बर पाय'), *भारतेंदु ग्रंथावली, खंड 2* : 698-99.

विक्टोरिया के चिरंजीवी होने की कामना करते हुए लिखा :

भ्रात मात सह सुतन जुत, प्रिया सहित जुवराज।
जिओ जिओ जुग जुग जिओ, भोगौ सब सुख साज।।

1875 में ही प्रिंस ऑफ़ वेल्स का स्वागत करने के उद्देश्य से भारतेंदु ने भारतीय विद्वानों को प्रिंस ऑफ़ वेल्स की प्रशंसा में हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, बांग्ला, गुजराती, तमिल और अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में कविता लिखने के लिए आमंत्रित किया। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पंडित बापूदेव शास्त्री, पंडित वेंकटेश शास्त्री, पंडित अनंतराम भट्ट, पंडित बालकृष्ण भट्ट आदि ने इस संग्रह के लिए अपनी रचनाएँ दीं। हिंदी में लिखी ये कविताएँ सवैया, दोहा, सोरठा, कवित्त, कुंडली, छप्पय आदि विविध शैलियों और छंदों में रची गई थीं। ये कविताएँ बाद में काव्य-संग्रह के रूप में भारतेंदु द्वारा *मानसोपायन* शीर्षक से प्रकाशित की गईं।[20] भारतेंदु ने ख़ुद भी इस संग्रह में हिंदी और गुजराती में कविताएँ लिखीं। अंग्रेज़ी राज के प्रति अपनी निष्ठा स्पष्ट शब्दों में ज़ाहिर करते हुए भारतेंदु ने लिखा कि 'हम सब स्वभावसिद्ध राजभक्त हैं।' यह काव्य-संग्रह वर्ष 1877 में आयोजित दिल्ली दरबार के अवसर पर प्रिंस ऑफ़ वेल्स को भेंट में दिया गया। प्रिंस ऑफ़ वेल्स के भारत आगमन पर लिखी गई कविता के आरंभ में ही भारतेंदु ने लिखा है :

आओ आओ हे जुवराज।
धन-धन भाग हमारे जागे पूरे सब मन-काज।।
कहँ हम कहँ तुम कहँ यह धन दिन कहँ यह सुभ संजोग।
कहँ हतभाग भूमि भारत की कहँ तुम-से नृप लोग।।[21]

भारतेंदु ने अपनी इस कविता में राजा द्वारा प्रजा को दर्शन दिए जाने की धारणा के महत्त्व पर भी ज़ोर दिया (*जदपि राज तुव कुल को इत बहु दिन सों बरसत छेम / तदपि राज-दरसन बिनु नहिं नृप प्रजा माहिं कछु प्रेम*)। उल्लेखनीय है कि वर्ष 1877 में आयोजित दिल्ली दरबार का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश शासन को वैधता और लोकप्रियता दिलाना था। 1877 और उसके बाद 1903 और 1911 में आयोजित हुए दरबारों को हम एक ऐसे राजनीतिक कर्मकांड के रूप में देख सकते हैं, जो स्टैनली तंबैय्या के अनुसार 'सीधे तौर पर सत्ता की अभिव्यक्ति और उसके व्यवहार से संबद्ध थी।'[22] दरबारों के आयोजन की पृष्ठभूमि 1857 के विद्रोह के एक साल बाद वायसराय लॉर्ड कैनिंग के उन दौरों में भी देखी जा सकती है, जिसमें उन्होंने उत्तर

[20] इस संग्रह में हिंदी, पंजाबी, मराठी, संस्कृत, उर्दू, तेलुगु और अंग्रेज़ी में लिखी कविताएँ शामिल थीं. लालबिहारी शुक्ल, रामराज, संतलाल, संतोष सिंह शर्मा, पंडित सखाराम भट्ट, पंडित गदाधर शर्मा मालवीय, तालिब, अहकार, हसन, ज़िया आदि कवियों की कविताएँ भी इस संकलन में शामिल थीं.

[21] *भारतेंदु ग्रंथावली, खंड 2* : 723.

[22] स्टैनली तंबैय्या (1976) : 113-69.

भारत के क्षेत्रों का व्यापक दौरा करते हुए भारतीय शासकों, कुलीन वर्गों और भारतीय एवं ब्रिटिश अधिकारियों से मुलाक़ातें की थीं और जगह-जगह दरबार आयोजित हुए थे। अप्रैल 1876 में 'रॉयल टाइटल्स ऐक्ट' पारित हुआ और उसे रानी विक्टोरिया की स्वीकृति भी मिल गई। भारत में दरबार के आयोजन के पीछे नवनियुक्त वायसराय लॉर्ड लिटन के साथ-साथ ब्रिटिश प्रधानमंत्री डिज़रैली और भारत-सचिव सैलिसबरी का विचार भी प्रमुखता से काम कर रहा था।

1877 के दिल्ली दरबार रूपी राजनीतिक कर्मकांड के ज़रिए वायसराय लॉर्ड लिटन भारत के राजा-महाराजा और कुलीन वर्ग को ही नहीं बल्कि आम हिंदुस्तानियों को भी आकर्षित करना चाहते थे, यह उनके पत्राचारों से स्पष्ट हो जाता है। लाहौर स्थित गवर्नमेंट कॉलेज के प्राचार्य और प्राच्य भाषाओं के प्राध्यापक जी.डब्ल्यू. लिटनर ने रानी विक्टोरिया के लिए 'क़ैसर-ए-हिंद' की उपाधि सुझाई, जिसे स्वीकार कर लिया गया।[23] दिल्ली दरबार के दौरान पेंशन और वेतन में बढ़ोत्तरी, सलामी की संख्या में वृद्धि, 'ऑर्डर ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया', 'ऑर्डर ऑफ़ द स्टार ऑफ़ इंडिया' जैसी उपाधियों के ज़रिए शासक वर्ग को प्रसन्न करने की कोशिश की गई। वहीं सेना का भत्ता और बोनस बढ़ाकर और सोलह हज़ार क़ैदियों को रिहा कर भी ब्रिटिश राज के पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास लॉर्ड लिटन द्वारा किया गया। इस दौरान रानी विक्टोरिया के सम्मान में जो वक्तव्य दिए गए, उनका विश्लेषण करते हुए इतिहासकार ऐलेन ट्रेविथिक लिखते हैं कि इनमें से अधिकांश रानी विक्टोरिया की अतिशय प्रशंसा से भरे थे। लेकिन कुछ वक्तव्य ऐसे भी थे जिनमें व्यंग्य का भाव झलकता है और कुछ में आलोचना के सुर भी सुनाई पड़ते हैं।[24]

वर्ष 1876 में रानी विक्टोरिया को भारत-सम्राज्ञी की उपाधि दिए जाने के अवसर पर भारतेंदु ने अनेक कविताएँ लिखीं। बाद में ये कविताएँ *मनोमुकुलमाला* शीर्षक से प्रकाशित हुईं। इस काव्य-संग्रह में भारतेंदु द्वारा हिंदी, संस्कृत और उर्दू में लिखी कविताएँ सम्मिलित थीं। भारतेंदु ने 'क़ैसर-ए-हिंद' के रूप में रानी विक्टोरिया की प्रशंसा करते हुए इस संकलन में शामिल एक ग़ज़ल में लिखा :

उसको शाहनशाही हर बार मुबारक होवे।
क़ैसरे हिंद का दरबार मुबारक होवे॥

बाद मुद्दत के हैं देहली के फिरे दिन या रब।
तख़्त ताऊस तिलाकार मुबारक होवे॥[25]

---

[23] लॉर्ड लिटन ने थॉमस थार्नटन और मेजर जनरल लॉर्ड रॉबर्ट्स को दरबार के आयोजन और व्यवस्था को सँभालने की ज़िम्मेदारी सौंपी. इसी क्रम में, जे.टी. व्हीलर ने दिल्ली दरबार (1877) का आधिकारिक इतिहास लिखा, जो उसी साल प्रकाशित हुआ. देखें, बर्नाड कोह्न (1983) : 165-210.

[24] ऐलेन ट्रेविथिक (1990) : 561-578.

[25] *भारतेंदु ग्रंथावली, खंड 2* : 747.

इतना ही नहीं, जनवरी 1877 में भारतेंदु ने *कविवचनसुधा* का एक विशेषांक भी निकाला, जो रानी विक्टोरिया को समर्पित था। 'भारतेंदु मंडल' के एक प्रमुख सदस्य चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' ने *कविवचनसुधा* के इस अंक में एक कविता लिखी, जिसका शीर्षक था 'राजराजेश्वरी जयति'। रानी विक्टोरिया की प्रशंसा करते हुए 'प्रेमघन' ने लिखा :

जै जै भारतभूमि जै भारतवासी लोग
जयति राजराजेश्वरी विक्टोरिया असोग...
ह्वै ह्वै ह्वै आनंद मगन देत सबै आसीस
जियै जियै विक्टोरिया सुख सों लाख बरीस॥[26]

इस दौरान भारतेंदु ने ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा लड़े गए युद्धों में अंग्रेज़ों के विजय की कामना करते हुए कविताएँ लिखीं और देसी रियासतों से युद्ध के मोर्चे पर अंग्रेज़ों की मदद करने की भी अपील की। वर्ष 1880 में आंग्ल-अफ़ग़ान युद्ध के दौरान भारतेंदु ने देसी रियासतों से एक ऐसी ही अपील की। बाद में इस युद्ध में अंग्रेज़ों को सफलता मिलने के बाद ब्रिटिश विजय पर उल्लास प्रकट करते हुए भारतेंदु ने 'विजयवल्लरी' शीर्षक से एक कविता भी लिखी। दो साल बाद, जब अंग्रेज़ी फ़ौज को आंग्ल-मिस्र युद्ध (1882) में सफलता मिली, तब भारतेंदु की अगुवाई में बनारस इंस्टीट्यूट द्वारा इस अवसर पर हर्षोल्लास प्रकट करने के लिए एक सभा आयोजित की गई। 22 सितंबर, 1882 को बनारस के टाउन हॉल में आयोजित इस सभा की अध्यक्षता राजा शिवप्रसाद ने की जिसमें बनारस के रईसों, न्यायिक, राजस्व एवं सिविल सेवा के अधिकारियों, पंडितों, प्रोफ़ेसरों, ज़िला एवं नगरपालिका समिति के सदस्यों ने शिरकत की। इस अवसर पर भारतेंदु ने उपस्थित जनसमुदाय के समक्ष अपनी एक कविता भी पढ़ी, जिसका शीर्षक था 'विजयिनी विजय वैजयंती'। अपनी इस कविता में मिस्र में ब्रिटिश साम्राज्य की विजय पर ख़ुशी प्रकट करते हुए भारतेंदु ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के भौगोलिक विस्तार की एक झलक प्रस्तुत की :

विंध्य हिमालय नील गिरि सिखरन चढ़े निसान
फहरत 'रूल ब्रिटानिया' कहि कहि मेघ समान
अटक कटक लौं आजु क्यौं सगरो आरज देस
अति आनँद मैं भरि रह्यौ मनु दुख को नहिं लेस॥[27]

वर्ष 1882 में ही जब रानी विक्टोरिया एक जानलेवा हमले में बाल-बाल बच गईं, तब भी भारतेंदु ने बनारस में एक सभा आयोजित कर रानी विक्टोरिया के दीर्घायु होने की कामना

---

[26] प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय व दिनेश नारायण उपाध्याय (सं.) (1939) : 123-25.

[27] *भारतेंदु ग्रंथावली, खंड 2* : 800.

प्रकट की।[28] भारतेंदु ने ब्रिटिश राष्ट्र गान 'गॉड सेव द क्वीन' का हिंदी अनुवाद भी किया था। उक्त अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

प्रभु रच्छहु दयाल महरानी
बहु दिन जिए प्रजा सुखदानी
हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी
सब दिस में तिनकी जय होई
रहै प्रसन्न सकल भय खोई
राज करै बहु दिन लौं सोई।
हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी॥

'होवै जुबिली जशन मुबारक'

वर्ष 1887 में रानी विक्टोरिया के सिंहासनारोहण के पचास वर्ष पूरे होने पर ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा इंग्लैंड और सभी ब्रिटिश उपनिवेशों में स्वर्ण-जयंती समारोह (गोल्डेन जुबिली) मनाया गया। हिंदी के लेखकों ने भी इस अवसर रानी विक्टोरिया को अपनी रचनाएँ समर्पित कीं। इस अवसर पर रची गई अपनी एक कविता में कवि 'प्रेमघन' लिखते हैं :

धनि दिवस बरिस पचास राजत राजराजेश्वरि भई।
या हिंद कैसर हिंद तुम दिन दिनन दुति दूनी दई॥
बदरीनारायन हूँ हरखि आसीस यह दीनी नई।
राजहु पचास बरीस औरहु करि जगत मंगलमई॥[29]

1888 में स्वर्ण जयंती के अवसर पर लंदन गईं लेखिका हरदेवी ने *लंदन जुबली* शीर्षक से एक पुस्तक लिखी। इसी पुस्तक में हरदेवी लिखती हैं :

न्याय सहित शासन करत, बीते वर्ष पचास।
तब जुबली शुभ दिवस कर, उत्सव कियो प्रकाश॥

अष्टादश शत ईसवी, अधिक सतासी जान।
भौम वार इकीसवीं, जून मास शुभ दान॥[30]

---

[28] इसी तरह वर्ष 1884 में जब ड्यूक ऑफ़ अल्बनी की मृत्यु हुई, तब भारतेंदु ने बनारस में एक शोक-सभा आयोजित की. पहले 12 अप्रैल, 1884 को आयोजित होने वाली सभा के लिए बनारस के मजिस्ट्रेट ने अनुमति देने से इंकार किया. किंतु अगले ही दिन मजिस्ट्रेट ने अनुमति दे दी. आख़िरकार, टाउन हॉल में ही बाबू प्रमददास मित्र की अध्यक्षता में शोक सभा आयोजित हुई.

[29] प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय व दिनेश नारायण उपाध्याय (सं.) (1939) : 291.

[30] हरदेवी (1888).

दस वर्ष बाद रानी विक्टोरिया के हीरक जयंती के अवसर पर 'प्रेमघन' ने 'हार्दिक हर्षादर्श' शीर्षक से एक लंबी कविता लिखी। कवित्त, दोहा, रोला, सवैया आदि छंदों में लिखी गई इस कविता में रानी विक्टोरिया के शासनकाल, उनकी उपलब्धियों और भारत पर उसके प्रभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस कविता के आरंभ में 'प्रेमघन' लिखते हैं :

विजयिनि श्री विक्टोरिया देवी दया निधान।
करै तिहारो ईस नित सहित ईसु कल्यान॥
सपरिवार सुख सों सदा रहित आधि अरु व्याधि।
राजहु राज सुनीति संग प्रजा परम हित साधि॥
कीरति उज्ज्वल रावरी और अधिक अधिकाय।
सारद पूनौ जोन्ह सम रहै छोर छिति छाय॥[31]

इसी अवसर पर राधाकृष्ण दास ने 'जुबिली' शीर्षक से एक कविता लिखी। जिसमें रानी विक्टोरिया का बखान करते हुए वे लिखते हैं :

कोटि कोटि सुरराज मुकुट लुंठित जा पद तर।
जासु नयन की कोर सदा जोहत ब्रह्मा हर॥
पै अपनी सत्ता नरपति मैं दिखरावन हित।
रहत युधिष्ठिर को आपहु रुख जोवत ही नित॥
सोई भक्तबच्छल करुणायतन यादवपति मंगल करहिं।
चिरविजयिनी श्री विक्टोरिया भारत भुव आनँद भरहिं॥[32]

हिंदी में रानी विक्टोरिया की जीवनियाँ

उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दशक में हिंदी में रानी विक्टोरिया की कई जीवनियाँ प्रकाशित हुईं। ठीक इसी समय दूसरी भारतीय भाषाओं में भी रानी विक्टोरिया की जीवनियाँ प्रकाशित हुईं। मसलन, बांग्ला में कृष्ण कुमार मित्र और बिपिन चंद्र पाल सरीखे राष्ट्रवादियों ने रानी विक्टोरिया की जीवनी लिखी थी। हिंदी में लिखी गई जीवनियों में से कुछ हिंदी लेखकों द्वारा लिखी और प्रकाशित की गईं तो कुछ क्रिश्चियन सोसाइटी और मिशन प्रेस द्वारा भी प्रकाशित की गईं। एक ऐसी ही जीवनी वर्ष 1896 में इलाहाबाद की क्रिश्चियन लिटररी सोसाइटी द्वारा प्रकाशित की गई। सोसाइटी ने इस संक्षिप्त जीवनी की तीन हज़ार प्रतियाँ मुद्रित और वितरित की थीं। यह सचित्र जीवनी हिंदुस्तानी ज़ुबान में रानी विक्टोरिया के जीवन की महत्त्वपूर्ण

[31] प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय व दिनेश नारायण उपाध्याय (सं.) (1939) : 267.

[32] श्यामसुंदर दास (सं.) (1930) : 18.

श्रीमती

महाराज्ञी इङ्गलैंडेश्वरी

क्वीन विक्टोरिया याचा

आप महाराज्ञी की बनायी

अंगरेज़ी पुस्तक से

उनके आज्ञाकारी परम शुभचिन्तक महाराजाधिराज काशिराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर ने हिन्दी में उलथा लिखाया।

THE QUEEN'S TRAVELS

IN SCOTLAND AND IRELAND.

TRANSLATED INTO HINDÍ

BY

HER MAJESTY'S MOST OBEDIENT AND DEVOTED SERVANT

HIS HIGHNESS IŚVARI PRASA'D NA'RA'YAṆ SINHA BAHA'DUR,

MAHA'RA'JA OF BANA'RAS.

बनारस

मेडिकल् हाल् के छापे ख़ाने में छापी गयी।

सन् १८७५ ई॰
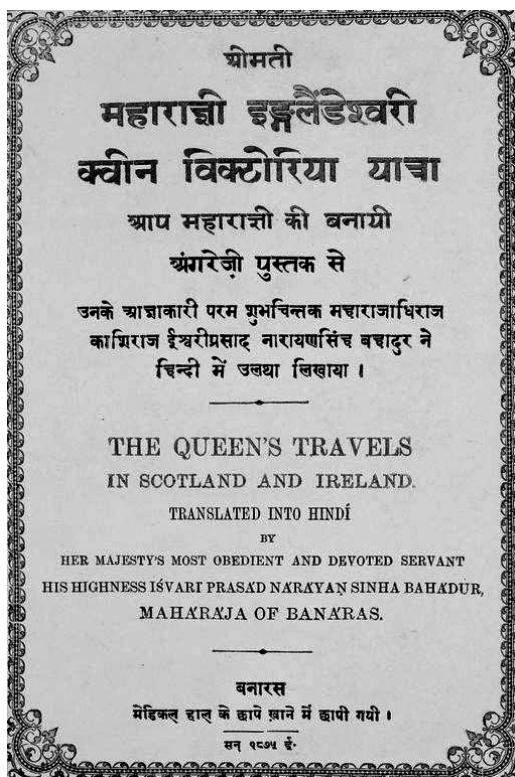
घटनाओं पर प्रकाश डालती है।[33] इससे एक साल पहले फ्रेडरिक पिन्कॉट ने हिंदी में रानी विक्टोरिया की एक जीवनी लिखी थी, जो बाँकीपुर स्थित खड्ग विलास प्रेस द्वारा वर्ष 1895 में प्रकाशित की गई।[34]

वर्ष 1901 में रानी विक्टोरिया के निधन के बाद हिंदी में उनकी कई जीवनियाँ प्रकाशित हुईं। उसी वर्ष हिंदी के प्रसिद्ध कवि राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' ने रानी विक्टोरिया की एक संक्षिप्त जीवनी लिखी।[35] वर्ष 1901 में ही *श्री वेंकटेश्वर समाचार* के संपादक पंडित लज्जाराम शर्मा ने रानी विक्टोरिया की एक और जीवनी लिखी। श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित यह जीवनी लिखने की प्रेरणा लज्जाराम शर्मा को खेमराज श्रीकृष्णदास से मिली थी।[36] विवरणात्मक शैली में लिखी गई इन जीवनियों में कालक्रमानुसार रानी विक्टोरिया के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण मिलता था। इसके साथ ही इनमें रानी विक्टोरिया के माता-पिता, उनकी शिक्षा, उनके परिवार और बच्चों, उनके विवाहित जीवन और पति अल्बर्ट से उनके संबंध, उनके वैधव्य का विवरण तो होता ही था। साथ ही, इनमें उनके शासनकाल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं जैसे उनके सिंहासनारोहण, उनके भारत-सम्राज्ञी बनने, दिल्ली दरबार, स्वर्ण जयंती और हीरक जयंती समारोहों का वर्णन भी होता था। साथ ही, रानी विक्टोरिया पर हुए जानलेवा हमलों और उनके सकुशल बच निकलने का भी विवरण होता था। सचित्र पुस्तकों में रानी विक्टोरिया का उनके हिंदुस्तानी सेवकों के साथ लिया गया चित्र भी अवश्य शामिल होता था। साथ ही, इन जीवनियों में रानी विक्टोरिया के शासनकाल में हुए विकास कार्यों, सैन्य अभियानों और ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार की भी चर्चा होती थी।

इन जीवनियों के अलावा रानी विक्टोरिया के यात्रा-वृत्तांतों का भी हिंदी में अनुवाद हुआ। ऐसा पहला अनुवाद बनारस के राजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह द्वारा किया गया। उन्होंने रानी विक्टोरिया के स्कॉटलैंड और आयरलैंड के यात्रा वृत्तान्त (*अवर लाइफ़ इन द हायलैंड्स*) का हिंदी में अनुवाद किया, जो 1875 में प्रकाशित हुआ। इस अनुदित पुस्तक की भूमिका में

---

[33] *विक्टोरिया महारानी का वृत्तान्त* (1896).

[34] फ्रेडरिक पिंकाट (1895).

[35] राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' (1901).

[36] पंडित लज्जाराम शर्मा (1901).

ईश्वरीप्रसाद सिंह लिखते हैं :

> हम लोगों को यहाँ श्रीमती के मुखारबिन्द से निकले हुए शब्द या हस्ताक्षर सुनने या देखने में आ जाते हैं तो उसी से अपना धन्य भाग्य जानते हैं इसी कारण जो कुछ अपनी यात्रा का वर्णन अपनी पुस्तक में लिखा है इस आज्ञाकारी परम शुभ चिंतक ने हिंदी में उलथा लिखाया जिस्मे [जिसमें] हमारे सब स्वदेशीय इस अपूर्व ग्रंथ के देखने और पढ़ने से कृतार्थ होवें।[37]

'ख़बर अनरथ की आई' : रानी की मृत्यु और शोकाकुल हिंदी जगत

22 जनवरी, 1901 को इंग्लैंड पर 64 वर्ष शासन करने के बाद रानी विक्टोरिया का निधन हो गया। *सरस्वती* और *नागरी प्रचारिणी पत्रिका* सरीखी हिंदी की अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में रानी विक्टोरिया की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कविताएँ और लेख प्रकाशित किए गए। राधाकृष्ण दास द्वारा लिखित एक ऐसी ही कविता 'विजयिनी विलाप' *सरस्वती* में प्रकाशित हुई। इस कविता में वे लिखते हैं :

> 'कहा तुम्है नहि ख़बर' ख़बर अनरथ की आई।
> भारतेश्वरी विजयिनी यह जग छोड़ि सिधाई॥
> तोरि जगत सो नेह मोरि मुख जग के सुख सों।
> छोरि सबै धन धान्य बोरि जग सागर दुख सों॥
> विमल कीर्ति फैलाइ, लोक करिकै यह निज बस।
> गई करन वह लोक विजय फैलावन निज जस॥[38]

रानी विक्टोरिया के निधन के बाद लिखे गए अपने एक अन्य लेख में राधाकृष्ण दास रानी विक्टोरिया के चरित्र और उनके दांपत्य जीवन की सराहना करते हुए लिखते हैं कि 'विलायत होने पर भी महारानी ने अपने पति से ऐसी प्रीति और भक्ति दिखाई जैसी प्रीति और भक्ति भारतवर्ष की सती कुलवती कामिनियाँ दिखाती हैं। इस दंपती प्रेम को देख सुन सारी प्रजा चकित और प्रफुल्लित होती थी।' रानी विक्टोरिया पर हुए जीवनघाती हमलों और उनके बच निकलने का विवरण देते हुए राधाकृष्ण दास ने लिखा :

> सर्वप्रिय होने पर भी कई बार महारानी पर कई दुष्टों ने घात किया। उन्होंने घात तो किया परंतु महारानी के पूर्ण पुण्य के कारण उन्हें उसकी ज़रा भी आँच न पहुँची। उसके प्रतिशोध में उन्होंने उन दुष्टों को अपनी अपार दया से क्षमा कर दिया।[39]

---

[37] ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह (अनु.) (1875).

[38] श्यामसुंदर दास (सं.) (1930) : 6.

[39] वही : 106.

कानपुर के 'रसिक समाज' और राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' ने भी रानी विक्टोरिया के निधन पर शोक प्रकट करते हुए कविताएँ लिखीं जो *विक्टोरियावियोग* शीर्षक से प्रकाशित हुईं। यह काव्य-संग्रह देवी प्रसाद पूर्ण द्वारा लिखित रानी विक्टोरिया की एक संक्षिप्त जीवनी (*विक्टोरियाचरितानन्द*) के साथ प्रकाशित हुआ। 'पूर्ण' के अलावा इस काव्य-संग्रह में ब्रजभूषणलाल गुप्त, पंडित रामरतन सनाढ्य, मुंशी कालीचरण, पंडित मथुराप्रसाद मिश्र, लाला राधाकृष्ण अग्रवाल, बाबू बद्रीप्रसाद गुप्त, बाबू मन्नीलाल, पंडित राजाराम दुबे, पंडित बालगोविंद, बाबू केदारनाथ अग्रवाल और गुरबख़्श सिंह दुबे की कविताएँ भी शामिल थीं। 'पूर्ण' अपनी कविता में लिखते हैं :

संवत्सर उन्नीस सौ सत्तावन दुख सार।
माघ उजेरे पाख मे भयो जगत अँधियार॥
मिती द्वितीया को ग्रस्यो अद्वितीय दुखजाल।
कीन्ही मंगलवार मे वार अमंगल काल॥
सोई श्री विक्टोरिया गई स्वर्ग को हाय,
संतत सम्पत राज सुख साज समस्त विहाय!
होत शोर लहरीन को उमड़त सिन्धु कलाप,
मानौ सोऊ शोकबस करहीं घोर विलाप!
कहत गवैये रोय के करि अति बदन मलीन,
काके हित अब गाइहैं "गॉड सेव दी क्वीन"॥[40]

आलोचक श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेवबिहारी मिश्र (मिश्रबंधु) ने रानी विक्टोरिया के निधन पर 'श्रीविक्टोरिया अष्टादशी' शीर्षक से एक कविता लिखी। मिश्र बंधुओं ने इस कविता की एक हज़ार प्रतियाँ छापकर लोगों में निःशुल्क वितरित की। इस कविता में रानी विक्टोरिया के जीवनकाल के महत्त्वपूर्ण पड़ावों की झलक तो मिलती ही है साथ ही, इसमें रानी के शासनकाल में चले ब्रिटिश सैन्य अभियानों का भी वर्णन किया गया है। मिश्र बंधु इस बात पर शोक जताते हैं कि रानी अपने जीवनकाल में कभी भारत-यात्रा पर न आ सकीं ('जदपि अभागे भारत के दुरभागहि कारन / आय नहीं श्रीमती सकीं इत हमैं उधारन')। वे रानी विक्टोरिया को 'जगत जननी' और 'जगदंबा' भी बताते हैं और लिखते हैं :

हा जगदीश्वर! आजु भयो अनरथ यह कैसो?
नृपगन को सिरताज गयो उठि जगते ऐसो॥
चहुँ दिसि जौन दयालु अमित सुख संपति छायो।
करि सत असत बिबेक धरम निज बिमल बनायो॥

[40] *विक्टोरियावियोग अर्थात श्रीमती राजरानी भारतेश्वरी विक्टोरिया के स्वर्गवास पर रसिक समाज, कानपुर के कवियों की शोक गर्भित कविता का संग्रह* (1901) : 1-2.

जग सुखद पारलीम्यण्ट को जेहि बहु बिधि आदर कर्यो।
सोइ जगत जननि विक्टोरिया हाय आजु कित पगुधर्यो?॥[41]

इसी कविता में मिश्रबंधुओं ने रानी विक्टोरिया के शासन की तुलना रामराज्य से की है और उन्हें काली के समान भी बताया है :

कालिका सी अति ह्वै बिकराल दल्यो रिपुजाल धरे नव तौरनि।
राम समान प्रजा प्रति पालि भर्यो पुहुमी सुख सों सब ठौरनि॥

रानी विक्टोरिया को माता मानने की यह प्रवृत्ति बंगाल के आरंभिक राष्ट्रवादियों में भी दिखाई पड़ती है। इतिहासकार इंदिरा चौधरी के अनुसार, 'भारत माता की छवियों के साथ रानी विक्टोरिया का यह समावेश राष्ट्रवादी विमर्श में मातृत्व की धारणा पर दिए गए ज़ोर की वजह से संभव हो सका।'[42] भारत माता और माता विक्टोरिया की यह छवियाँ दर्शाती हैं कि कैसे औपनिवेशिक और देशज धारणाओं में होने वाली जटिल अंतःक्रिया का इस्तेमाल उभरते हुए मध्यम वर्ग द्वारा अपनी आत्म-छवि के निर्माण के लिए किया जा रहा था। डोरोथी थॉम्प्सन लिखती हैं :

> अगर रानी विक्टोरिया के स्त्री होने ने सम्राज्ञी को साम्राज्य के दूसरे राष्ट्रों में अधिक स्वीकार्य बनाया, तो शायद इसने राजसिंहासन को लोकप्रिय बनाने में भी मदद की हो... रानी के जीवन पर आधारित सस्ती पुस्तिकाओं और उनकी तस्वीरों ने सम्राज्ञी और उनके परिवार की छवि को साम्राज्य की प्रजा की चेतना तक निरंतर पहुंचाने का काम भी किया।[43]

राजभक्ति और हिंदी बौद्धिकों का हिंदू मानस

वर्ष 1875 में प्रिंस ऑफ़ वेल्स के बनारस आने पर लिखी गई कविता ('श्री राजकुमार-शुभागमन वर्णन') में एक जगह भारतेंदु ने लिखा कि राजकुमार का काशी आगमन हृदय के उस घाव पर मरहम की तरह है, जो विश्वनाथ मंदिर के निकट मस्जिद को देखकर चोटिल हो गया है :

मसजिद लखि बिसुनाथ ढिग परे हिए जो घाव
ता कहँ मरहम सरिस यह तुव दरसन नर-राव॥[44]

---

41 श्यामबिहारी मिश्र व शुकदेव बिहारी मिश्र (1915) : 23.

42 इंदिरा चौधरी-सेनगुप्ता (1992) : 20-37.

43 डोरोथी थॉम्प्सन (1990) : 139.

44 *भारतेंदु ग्रंथावली, खंड 2* : 699. भारतेंदु द्वारा हिंदी भाषा व साहित्य के साथ-साथ और हिंदू अस्मिता को गढ़ने के प्रयासों के ऐतिहासिक विश्लेषण हेतु देखें, वसुधा डालमिया (1997).

भारतेंदु ने लिखा कि पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के बाद प्रजा सुख से वंचित हो गई। भारतेंदु यहाँ तक कहते हैं कि भले ही मुस्लिम शासकों ('यवनों') ने भारत में रहकर ही शासन किया हो, किंतु हिंदू समाज ने कभी उन्हें अपना नहीं माना।

पृथीराज के मरें लख्यौ नहिं सो सुख कबहूँ नैन।
तरसत प्रजा सुनन को नित हीं निज स्वामी के बैन।।
जदपि जवनगन राज कियो इतही बसिकै सह साज।
पै तिनको निज करि नहिं जान्यौ कबहूँ हिंदू समाज।।[45]

इसी प्रकार, भारतेंदु मंडल के सदस्य कवि 'प्रेमघन' ने वर्ष 1877 में लिखी अपनी कविता 'राजराजेश्वरी जयति' में, जो *कवि वचन सुधा* में प्रकाशित हुई, मुस्लिम शासकों के अत्याचारों का वर्णन करते हुए लिखा :

याके पुत्रन को सदा हति बोई गुनि काम।
थूँकि थूँकि भारत नरन कियो अमित इसलाम।।
दिल्ली, मथुरा, कन्नउज से अंगन करि करि भंग।
आरज रुधिर प्रवाह सों करि करि रंगा रंग।।
अति असंख्य अद्भुत सुगृह, देवालय बहु तोरि।
पूरब कथित अभूषननि डार्यो याँसो छोरि।।[46]

अपनी इस कविता में 'प्रेमघन' ने मुस्लिम शासकों द्वारा जबरन धर्मांतरण करने, हिंदुओं पर हुए अत्याचारों का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया और अंग्रेज़ों को मुस्लिम शासक से मुक्ति दिलाने वालों के रूप में देखा :

या विधि जब उत्पात बहु कियो यवन नरनाह।
दुख सागर बाढ़त भयो भारत परजा माँह।।
जब करुणानिधि आपु हरि ह्वै कै महा अधीर।
नासि यवन राजहि हरयो प्रजा दुसह दुख पीर।।

वर्ष 1887 में लिखे गए नाटक *भारत सौभाग्य* के लेखक अंबिका दत्त व्यास ने भी 'अंग्रेज़ों को मुग़ल शासकों के अत्याचार से हिंदू प्रजा को बचाने वाले मुक्तिदाता' के रूप में देखा।[47] स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी में लिखी गई इन रचनाओं में जहाँ दिल्ली के सुल्तानों और मुग़ल

[45] *भारतेंदु ग्रंथावली, खंड 2* : 723.

[46] प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय व दिनेश नारायण उपाध्याय (सं.) (1939) : 124.

[47] *पंडित अंबिका दत्त व्यास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व* : 180.

बादशाहों को आक्रांता और खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया, वहीं अंग्रेज़ी राज की प्रशंसा मुस्लिम शासकों से मुक्ति दिलाने वाले के रूप में की गई।

निष्कर्ष

उन्नीसवीं सदी में हिंदी समेत दूसरी भारतीय भाषाओं में राजभक्ति से जुड़ी रचनाओं की बहुतायत दिखाई देती है। ये रचनाएँ कविता, जीवनी, निबंध, अनुवाद आदि विभिन्न विधाओं में हो रही थीं। ब्रिटिश राजपरिवार के सदस्यों का भारत आगमन हो या दिल्ली दरबार या फिर रानी विक्टोरिया के जुबिली समारोह – इन सभी अवसरों पर हिंदी की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित हुए, भारतेंदु जैसे लेखकों ने न केवल ख़ुद राजभक्ति से सराबोर रचनाएँ कीं, बल्कि अपने समकालीन हिंदी के दूसरे लेखकों को भी रानी विक्टोरिया और युवराज के सम्मान में कविताएँ लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इन रचनाओं में भारत के पौराणिक आख्यानों को भी बेझिझक उद्धृत किया जाता था। हिंदी के इन लेखकों द्वारा पौराणिक अतीत को औपनिवेशिक वर्तमान पर किस तरह आरोपित किया गया, ये रचनाएँ इसका अच्छा उदाहरण हैं। मसलन, प्रिंस ऑफ़ वेल्स के काशी आगमन की तुलना राम के अयोध्या लौटने से करना या फिर रानी विक्टोरिया के शासनकाल को 'रामराज्य' बताना और ख़ुद विक्टोरिया को 'जगत जननी' या 'जगदंबा' बताना। भारतेंदु ने भारतीय परंपरा का हवाला देते हुए 'दर्शन' देने को राजा और प्रजा के संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए अहम बताया। अकारण नहीं कि कुछ लेखकों ने विक्टोरिया के भारत न आ सकने को भारत का दुर्भाग्य तक बताया।

रानी विक्टोरिया की जो जीवनियाँ लिखी गईं या फिर उनके निधन के बाद हिंदी में जो कविताएँ या लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए, उनमें जेंडर की राजनीति से जुड़े आयाम भी कहीं गहरे काम कर रहे थे। हिंदी के इन लेखकों द्वारा विक्टोरिया को न केवल पतिव्रता, सती कुलवती बताया गया, बल्कि यह भी कहा गया कि विक्टोरिया पतिधर्म का पालन करते हुए दुनिया भर की स्त्रियों के लिए एक मिसाल छोड़ गई हैं। विक्टोरिया को 'आदर्श भारतीय स्त्री' की प्रतिमूर्ति बताया गया और ऐसा करते हुए दूसरी स्त्रियों से भी पति के प्रति वैसी ही प्रीति और भक्ति दर्शाने की अपेक्षा की गई।

हिंदी-नागरी आंदोलन हो या फिर गोरक्षा आंदोलन हो – इन आंदोलनों में भी रानी विक्टोरिया को न केवल न्यायप्रिय शासिका के रूप में प्रस्तुत किया गया, बल्कि आंदोलन के समर्थन में विक्टोरिया का नाम भी बार-बार लिया गया। राजनीतिक मंचों पर भी मदन मोहन मालवीय सरीखे नेता विधायिकाओं के विस्तार, उनके भारतीयकरण, योग्यता के आधार पर सरकारी सेवाओं में नियुक्ति और प्रतिनिधित्व जैसे महत्त्वपूर्ण सवाल उठाते हुए रानी विक्टोरिया के घोषणापत्र की याद दिलाते रहे। रानी विक्टोरिया और राजपरिवार के दूसरे सदस्यों को समर्पित स्मारक, पार्क, कॉलेज जहाँ एक ओर औपनिवेशिक सत्ता की अभिव्यक्ति और उसके प्रभावशाली प्रतीक के रूप में देखे जा सकते हैं वहीं आज़ादी के बाद इन स्मारकों और इनसे जुड़ी औपनिवेशिक अतीत की तल्ख़ स्मृतियों को लेकर असहजता और उसका प्रतिरोध उत्तर-औपनिवेशिक राजनीति और इतिहास को समझने के महत्त्वपूर्ण सूत्र भी उपलब्ध कराता है

संदर्भ

इंदिरा चौधरी-सेनगुप्ता (1992), 'मदर इंडिया ऐंड मदर विक्टोरिया : मदरहुड ऐंड नैशनलिज़्म इन नाइंटींथ-सेंचुरी बंगाल', *साउथ एशिया रिसर्च*, खंड 12, सं. 1, मई 1992 : 20-37.

ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह (अनु.) (1875), *श्रीमती महाराज्ञी इंग्लैंडेश्वरी क्वीन विक्टोरिया यात्रा*, मेडिकल हॉल, बनारस.

एच.आर. नेविल (1909), *बनारस : ए गैज़ेटियर, बीइंग वॉल्यूम XXVI ऑफ़ द डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटियर्स ऑफ़ द यूनाइटेड प्रोविंसेज़ ऑफ़ आगरा ऐंड अवध*, गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद.

ऐलेन ट्रेविथिक (1990), 'सम स्ट्रक्चरल ऐंड सीक्वेंशियल आस्पेक्ट्स ऑफ़ द ब्रिटिश इंपीरियल एसेंबलेजेज़ ऐट दिल्ली : 1877-1911', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़*, 24, 3: 561-578.

डोरोथी थॉम्प्सन (1990), *क्वीन विक्टोरिया : जेंडर ऐंड पावर*, विरागो, लंदन.

द ऑनरेबल पंडित मदन मोहन मालवीय : हिज़ लाइफ़ ऐंड स्पीचेज़, द्वितीय संस्करण, गणेश ऐंड कं., मद्रास.

दयानंद सरस्वती (1998 [1881]), *गोकरुणानिधि*, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली.

पंडित लज्जाराम शर्मा (1901), *श्रीमती महारानी भारतेश्वरी विक्टोरिया का चरित्र*, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई.

पीटर रॉब (1996), 'द चैलेंज ऑफ़ गौ माता : ब्रिटिश पॉलिसी ऐंड रिलीजियस चेंज इन इंडिया, 1880-1916', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़*, खंड 20, सं. 2.

प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय व दिनेश नारायण उपाध्याय (सं.) (1939), *प्रेमघन-सर्वस्व*, भाग 1, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग.

फ्रेडरिक पिन्कॉट (1895), *राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया क़ैसर-ए-हिंद का जीवनचरित्र*, खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर.

बर्नार्ड कोह्न (1983), 'रेप्रेज़ेन्टिंग अथॉरिटी इन विक्टोरियन इंडिया', एरिक हॉब्सबाम व टेरेंस रेंजर (सं.), *दि इन्वेन्शन ऑफ़ ट्रैडिशन*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज : 165-210.

ब्रजरत्नदास (1935), *भारतेंदु ग्रंथावली*, दूसरा खंड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

ब्रजरत्नदास (1962), *भारतेंदु हरिश्चंद्र,* हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद.

माइल्स टेलर (2018), *दि इंग्लिश महारानी : क्वीन विक्टोरिया ऐंड इंडिया*, पेंग्विन, गुड़गाँव.

रविदत्त शुक्ल (1884), *देवाक्षर चरित्र*, लाइट प्रेस, बनारस.

राजा शिवप्रसाद (1881), *इतिहासतिमिरनाशक*, भाग 2, गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद.

रामसागर सिंह (2010), *समाजवाद की दशा-दिशा और लोहिया जीवन-दर्शन*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' (1901), *विक्टोरिया चरितानन्द*, लॉ प्रेस, कानपुर.

वसुधा डालमिया (1997 [2010]), द *नैशनलाइज़ेशन ऑफ़ हिंदू ट्रेडिशंस : भारतेंदु हरिश्चंद्र ऐंड नाइंटीन्थ-सेंचुरी बनारस*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

विक्टोरिया महारानी का वृत्तांत, (1896) मिशन प्रेस, इलाहाबाद.

विक्टोरियावियोग अर्थात श्रीमती राजरानी भारतेश्वरी विक्टोरिया के स्वर्गवास पर रसिक समाज, कानपुर के कवियों की शोक गर्भित कविता का संग्रह (1901), लॉ प्रेस, कानपुर.

श्यामबिहारी मिश्र व शुकदेव बिहारी मिश्र (1915), *पुष्पांजलि*, भाग 1, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद.

श्यामसुंदर दास (सं.) (1930), *राधाकृष्ण-ग्रंथावली*, भाग 1 इंडियन प्रेस, प्रयाग.

सुधीर चंद्र (1992), *दि ऑप्रेसिव प्रजेंट : लिटरेचर ऐंड सोशल कांशसनेस इन कॉलोनियल इंडिया*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

स्टैनली तंबैय्या (1976), 'ए परफ़ॉर्मेटिव एप्रोच टू रिचुअल', *प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द ब्रिटिश एकैडमी*, भाग 65 : 113-69.

स्वनामधन्य पंडित अंबिका दत्त व्यास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, (1992), राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर.

हरदेवी (1888), *लंदन जुबली,* इंपीरियल प्रेस, लाहौर.

ज्ञानेंद्र पांडे (1981), 'रैलीइंग राउंड द काउ : सेक्टेरियन स्ट्राइफ़ इन दि भोजपुर रीजन, 1888-1917', ओकेज़नल पेपर सं. 19, सेंटर फ़ॉर स्टडीज़ इन सोशल साइंस, सेज़, कलकत्ता.